

जैन समाजात प्रचंड खपाचे व लोकप्रिय मासिक



जैन जागृति

(Since 1969)

www.jainjagruti.in

६२ ऋतुराज सोसायटी, पुणे-सातारा रोड,
सिटी प्राईडच्या पुढची लेन, पुणे ४११०३७.

ऑफिस मो. : ८२६२०५६४८०

मोबाईल : संजय ९८२२०८६९९७, सुनंदा ९४२३५६२९९९

संपादक व प्रकाशक : संजय के. चोरडिया

: सौ. सुनंदा एस. चोरडिया

❖ संस्थापक ❖

स्व. श्री. कांतीलालजी चोरडिया

❖ वर्ष ५८ वे ❖ अंक २ व ३ ❖ ऑक्टोबर-नोव्हेंबर २०२६ ❖ वीर संवत् २५५२ ❖ विक्रम संवत् २०८२

या अंकात	पान नं.	पान नं.
● दीपावली पूजन विधी	२३	● दुःख : एक अभिशाप या वरदान ९५
● दीपावली पूजन मुहूर्त	२७	● आप का पेशा क्या है ९७
● साधना के महापथ पर भगवान महावीर	२९	● भावकर्म से होता हैरान :
● पर्व खुशियों का सहभाग	३३	वीतरागता से पाओ निर्वाण ९९
● दिवाळी सण - नेमका कशाचा	३४	● आओ : दुर्ध्यान छोडे ! १०३
● ॥ जिनेश्वरी ॥ अध्याय ११ : बहुश्रुत पूजा	४३	● जीवन को अर्थ पूर्ण बनाने के लिए १०६
● गुरु गौतम स्वामी	४९	● स्नेहाचे प्रतीक असणारी भाऊबीज ११५
● मैं महावीर क्यों बनना चाहती हूँ	५३	● छूआछूत ना कर ११६
● सनाथ कौन ? अनाथ कौन	५५	● अ.भा. समग्र जैन संप्रदाय तालिका २०२६ ११९
● प्रकाश पूँज, प्रभु महावीर	५८	● वन मिनिट प्लीज १२४
● विश्व शांति के तीन सूत्र : * अहिंसा	६७	● अनासक्ति के सम्राट भरत चक्रवर्ती १२७
* अपरिग्रह - ६९ * अनेकांत -	७१	● असंयम से संयम की ओर बडे कदम १२९
● वीरता का शिखर : भगवान महावीर	७५	● बिन जाने कित जाऊँ - प्रश्नोत्तरी प्रवचन १३९
● गोचरी	७७	● आचार्य हेमचन्द्र १४२
● आतम रुप निखर नर, यही रुप है सत्य	९१	● मत फसना यूँ भाई १४४
● नफरत V/s प्यार	९४	● हास्य जागृती १४५

जैन जागृति ❖ ऑक्टोबर-नोव्हेंबर २०२६ (संयुक्त अंक) ❖ १९ ❖

● या गोष्टी टाळता येणार नाहीत का ?	१४७	● गुरुदेव राकेशजी - ६० वी जन्म वर्षगांठ	१९०
● जीवनाचा जी.पी.एस.	१४८	● जीवन उसी का सार्थक है	१९२
● शायद मुझे जीना आ गया	१४९	● ज्ञान भवों-भवों तक रहता हैं	१९३
● माझां स्माईल, माझी स्टाईल, माझी ओळख	१५०	● विवाह : सात्विक कौटुंबिक उत्सव	१९५
● आपली मुलं घरात पाहण्यासारखी		● रिश्तों में जुड़ा है खुशियों का गेम	१९७
का वागतात	१५३	● हाथिनी - माधुरी की घर वापसी	१९८
● श्री रमणिक मुनिजी - ६० वां जन्मदिन	१६३	● अहिंसक अर्थ व्यवस्था के प्रणेता	२००
● श्री. धीरजजी जैन - पुरस्कार	१६५	● नेतृत्व करना आसान नहीं	२०२
● JATF पुणे सेंटर - उद्घाटन	१६६	● प्रा. डॉ. संजयजी चोरडिया - पुरस्कार	२११
● जितो पुणे - नवीन पदाधिकारी	१६७	● वर्धमान एज्युकेशन - दीक्षांत समारोह	२१२
● धर्माच्या कॉलम मध्ये फक्त जैन लिहा	१६७	● खुश रहे	२१४
● क्षेत्रपाल प्रतिष्ठान, लोणीकंद	१६८	● स्वानंद चिंतन, पुस्तक प्रकाशन	२१७
● श्री. मनोजजी छाजेड - पुरस्कार	१६९	● विनोद कां. शहा, पुणे - पुरस्कार	२१७
● जैन जागृति - पर्युषण विशेषांक लोकार्पण	१७१	● डायग्नोपिन-डायग्नोस्टीक, पुणे - अॅवार्ड	२१७
● पुणे मार्केट यार्ड - नो यूपीआय डे	१७२	● जैन श्रावक संघ, लोणावळा	२१९
● श्री. अभयजी संचेती - सन्मान	१७३	● श्री. शशिकांतजी सुराणा - मनमाड	२२०
● दुगड सभागृहाचे उद्घाटन - पुणे	१७४	● अॅड. अशोकजी बोरा - शाळेला देणगी	२२०
● निर्मला चंद्रकांतजी छाजेड - पुरस्कार	१७५	● आनंदऋषिजी हॉस्पिटल - शिबीर	२२१
● विमल अजित जीवदाय धाम, पुणे	१७६	● बिखरे मोती	२२४
● अमोल बोरा अॅण्ड कंपनी - दुबई	१७७	● जैन जागृति - निवेदन	२३१
● समझदार कौन ?	१८७	● भारत सरकार जनगणना - २०२७	२३३
● गांधी गुरुजी निबंध स्पर्धा - निकाल	१८८	● सुरक्षा	२३४
● कषाय	१८९	● विविध धार्मिक, सामाजिक बातम्या	

जैन जागृति - "मॅगझिन पोस्ट" सुविधेसह वर्गणीचे दर (महाराष्ट्र साठी)

* वार्षिक वर्गणी - रु. ८०० * त्रिवार्षिक वर्गणी - रु. २३००

"मॅगझिन पोस्ट" द्वारा बंद पाकिटातून मासिक घरपोच पोहचण्याची १००% हमी.

या अंकाची किंमत १०० रु. ● Google Pay - M. 9822086997



मनुष्य के जीवन में उत्सवों का बड़ा महत्त्व है। उन उत्सव पर्वों में दीपावली पर्व भारत वर्ष का एक श्रेष्ठतम पर्व है। दीपावली दीपोत्सव का, प्रकाशोत्सव का पर्व है। शक्ति, भक्ति और श्रद्धा का पर्व है। दीपक की शुभ ज्योति हमें ऊर्ध्वगमन का शुभ संदेश देती है, साथ ही अपने सान्निध्य में आनेवाले हर दीप को ही नहीं हर बुझे दीप को भी प्रकाशित करने का संदेश देती है। दीप से दीप जलते जाते हैं और दीपमाला बनकर दीपावली बन जाती है।

यह पर्व मानव जीवन की पूर्णता और उसकी सार्थकता को जानने-समझने का पर्व है। हमारे भीतर अज्ञान का तमस छाया हुआ है, जो ज्ञान के प्रकाश से ही मिट सकता है। ज्ञान ही संसार में सबसे बड़ा एवं सर्वश्रेष्ठ प्रकाश है। जब ज्ञान का दीप जलता है, तब भीतर और बाहर दोनों ओर आलोक जगमगाता है।

प्रभु महावीर के इस निर्वाण पर्व दीपावली के उपलक्ष्य में हम अहिंसा के दीप जलाये, मैत्री का प्रकाश फैलाये और आपस में प्रेमभाव बढ़ाने का प्रयास करें।

जैन समाज में इस त्योहार का विशेष महत्त्व इसलिए है कि इसी दिन अमावस्या को भगवान महावीर स्वामी का निर्वाण हुआ था। वे जन्म-मृत्यु के दुखों से मुक्त होकर मोक्ष गामी हुए। चतुर्दशी और अमावस्या ये दो दिन लगातार भ. महावीर स्वामी जनसमुदायों को अंतिमदेशना (उपदेश) देते रहे। वह उपदेश ही उत्तराध्ययन सूत्र है। जिसका पठन-पाठन श्रवण इन दिनों में किया जाता है। कई महानुभाव बड़ी श्रद्धा के साथ उपवास करते हैं। भ. महावीर का जाप करते हैं। पौषध के साथ उपवास करते हैं।

कार्तिक सूद प्रतिपदा के दिन प्रथम गणधर गौतमस्वामीजी को केवलज्ञान प्राप्त हुआ। नए वर्ष के प्रातःकाल में गौतमस्वामीजी का जाप किया जाता है।

सभी भक्त जन सुबह गुरु भगवन्तों के मुखारविंद से शुभ मांगलिक श्रवण करते हैं। मंत्र गर्भित स्तोत्र का श्रवण करते हैं। इसके बाद ही अपने कार्य का प्रारंभ करते हैं।

दीपावली त्योहार हमारे लिए एक महत्त्वपूर्ण आध्यात्मिक त्योहार है। - संपादक

दीपावली पूजन विधि

सर्व प्रथम घर के सभी सदस्य मंगलभावना के साथ तीन बार नवकार महामंत्र का भक्तिसे भर कर उच्चारण करें।

नवकार महामंत्र

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं,
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं,
एसो पंच णमोक्कारो, सव्वपावप्पणासणो,
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं ॥

तीर्थकरों को वंदन

समवशरण का स्मरण कर पूर्व और उत्तर दिशा के बीच ईशान्य दिशा में महाविदेह क्षेत्र है वहाँ बीस विहरमान तीर्थकर वर्तमान में विराजमान है अतः अत्यंत भावपूर्ण हृदय से उन्हें तीन बार वंदन नमन करें।

गुरु भगवन्त को वंदन

जो गुरु आपने माने हैं उन्हें श्रद्धापूर्वक वंदना करना।

- शुभ मुहूर्त पर गद्दी या गालीचा बिछाकर भ. महावीर स्वामीजी, श्री गौतम स्वामीजी, श्री लक्ष्मी देवी, श्री सरस्वती देवी के फोटो पूर्व या उत्तर दिशा में रखें।
- गद्दीपर नई बहियाँ (नोट बुक), बिल बुक, चेक बुक, सुवर्ण-चांदी या धातु के देवी देवताओं के सिक्के, नया पेन पूजा की सामग्री रखें।
- पूजा के लिए साहित्य - खाने के पान डंडल सहित,

मंगलानां च सर्वेषां, आद्यं भवति मंगलम् ।
 अर्हमित्यक्षरं माया, बीजं च प्रणवाक्षरम्,
 एवं नाना स्वरूपं च, ध्येयं ध्यायन्ति योगिनः।
 हृत्पदं षोडशदलं, स्थापितं षोडशाक्षरम्
 परमेष्ठिस्तुते बीजं, ध्यायेक्षरदूरदं मुदा ।
 मंत्रणामादिमं मंत्रं, तत्र विघ्नौघ निग्रहे,
 ये स्मरन्ति सदैवेनं, ते भवन्ति जिन प्रभा ॥
 तत्पश्चात् निम्नलिखित मंत्र जप करते-करते जल,
 चंदन, पुष्प (फूल), धूप, दीप, अक्षदा (चावल), फल,
 नैवेद्य इन आठ वस्तुओं से वही पूजन करें ।

ॐ ज्हीं श्री भगवत्यै, केवलज्ञान स्वरूपायै,
 लोकालोक प्रकाशिकायै, सरस्वत्यै, लक्ष्म्यै (जलं)
 समर्पयामि स्वाहा ।

दूसरी बार यही श्लोक बोलते हुए जल की जगह
 चंदन बोले इस प्रकार आठों ही वस्तुओं के नाम लेकर
 आठ बार यह श्लोक बोलें ।

पूजा में सभी सदस्य खड़े होकर निम्नलिखित
 प्रार्थना बोलें ।

॥ श्री सरस्वती स्तोत्र ॥

सकल लोक सुसेवित पंकजा
 वर यशोर्जित शारद कौमुदी,
 निखिल कल्मष नाशन तत्परा
 जयतु सा जगतां जननी सदा ॥
 कमल गर्भ विराजित भूधना,
 मणि किरीट सुशोभित मस्तका,
 कनक कुंडल भूषित कर्णिका,
 जयतु सा जगतां जननी सदा ॥
 वसुहरिद् गज संस्नपितेश्वरी
 विधृत सोमकला जगदीश्वरी,
 जलज पत्र समान विलोचना
 जयतु सा जगतां जननी सदा ॥
 निज सुधैर्य जितामर भूधरा,
 निहित पुष्कर वृंदल सत्कारा
 समुदितार्क सदृतनु बल्लिका,
 जयतु सा जगतां जननी सदा ॥
 विविध वांछित कामदुधाद्भूता,

विशद पद्म हृदान्तर वासिनी
 सुमति सागर वर्धन चंद्रिका,
 जयतु सा जगतां जननी सदा ॥

॥ श्री लक्ष्मी स्तोत्र ॥

नमोस्तुते महालक्ष्मी महासौख्य प्रदायिनी
 सर्वदा देही मे द्रव्यं, दानाय मुक्ती हेतवे ॥ १ ॥
 धनं धान्य धरां हर्ष, कीर्तिम्, आयुः यशः श्रियम्
 वाहनाम् दन्तिन् पुत्रान्, महालक्ष्मी प्रयच्छ मे ॥ २ ॥
 यन्मया वांछितं देवी, तत्सर्वं सफलं कुरु
 न बान्ध्यन्ता कुकर्माणि, संकटान्मे निवारय ॥ ३ ॥

॥ प्रार्थना ॥

सुंदर आरोग्य निवास करे दृढ तन में ।
 आशा, उत्साह, उमंग भरे शुचि मन में ।
 न हो अनुचित योग प्रयोग धन साधन में ।
 उत्कृष्ट उच्च आदर्श जगे जीवन में ।
 तम मिटे, ज्ञानकी ज्योति जगत में छाये ।
 प्रभु ! दिव्य दिवाली भव्य भाव भर लाये ।

इसके बाद एक थाली में दीया लेकर कपूर से
 आरती करे - निम्न आरती बोले ।

॥ आरती ॥

सकल जिनंद नमी करी, जिनवाणी मन लाय ।
 सरस्वति लक्ष्मी करू आरती, आतम सुगुरू पसाय ॥
 ज्ञान जगत में सार हैं । ज्ञान परम हितकार ।
 ज्ञान सूर्य से होता है, दुरित तिमिर अपहार ॥
 श्री सरस्वती प्रभाव से, लहे जगत सम्मान ।
 ज्ञान बिना पशु सारिखा, पावे अति अपमान ॥
 श्रद्धा मूल क्रिया कही, ज्ञान मूल है तास ।
 पावे शिव सुख आतमा, इससे अविचल वास ॥
 अष्टमपद विशति पदे, सप्तम नवपद ज्ञान ।
 तीर्थकर पदवी लहे, आराधक भगवान ॥

आरती के बाद निम्नलिखित अष्टदोहे बोले ।

॥ अष्टदोहे ॥

अंगुष्ठे अमृत वसे लब्धितणा भंडार ।
 जय गुरू गौतम समरिये, वांछित फल दातार ॥ १ ॥
 प्रभू वचने त्रिपदी लही, सूत्र रचे तेणीवार ।
 चऊदह पूरब माँ रचे, लोकालोक विचार ॥ २ ॥

भगवति सूत्र कर नमी, बंभी लिपि जयकार ।
लोकलोकोत्तर सुख भणी, वाणी लिपी अढार ॥३॥
वीर प्रभू सुखिया थया, दिवाली दिन सार ।
अंतर महरत तत्क्षणे, सुखिया सहू संसार ॥४॥
केवलज्ञान लहे सदा, श्री गौतम गणधार ।
सुरनर पर्षदा आगले घट अभिषेक उदार ॥५॥
सुरवर पर्षदा आगले, भाखे श्री श्रुतनाण ।
नाण थकी जग जाणिये, द्रव्यादिक चौठाण ॥६॥
ते श्रुतज्ञान ने पुजिये, दीप धूप मनोहार ।
वीर आगम अविचल रहो, वर्ष एकवीस हजार ॥७॥
गुरू गौतम अष्टक कही, आणि हर्ष उल्लास ।
भाव भरी जे समरशे, पुरे सरस्वती आस ॥८॥

॥ लोगस्स (चउव्वीसत्थव) का पाठ ॥

लोगस्स उज्जोगारे, धम्मतिथ्यरे जिणे ।
अरिहंते कित्तइस्सं, चउवीसं पि केवली ॥१॥
उसभमजियं च वंदे, संभवमभिणंदणं च सुमइं च ।
पउमप्पहं सुपासं, जिणं च चंदप्पहं वंदे ॥२॥
सुविहिं च पुप्फदंतं, सीयल सिज्जं च वासुपुज्जं च ।
विमलमणंतं च जिणं, धम्मं संतिं च वंदामि ॥३॥
कुंथुं अरं च मल्लिं, वंदे मुणिसुव्वयं नमिजिणं च ।
वंदामि रिट्ठनेमि, पासं तह वध्दमाणं च ॥४॥
एवं मए अभित्थुआ, विहुयरयमला पहीणजरमरणा ।
चउवीसंपि जिणवरा, तिथ्यरा में पसीयंतु ॥५॥
कित्तियवंदिय महिया, जे ए लोगस्स उत्तमा सिद्धा ।
आरुगबोहिलाभं, समाहिवरमुत्तमं दिंतु ॥६॥
चंदेसु निम्मलयरा, आइच्चेसु अहियं पयासयरा ।
सागरवरगंभीरा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ॥७॥

॥ नमोत्थुणं का पाठ ॥ (२ बार)

नमोत्थुणं अरिहंताणं, भगवंताणं, आइगराणं,
तिथ्यराणं, संय-संबुद्धाणं, परिसुत्तमाणं पुरिस-
सीहाणं, पुरिस-वर-पुण्डरीयाणं, पुरिसवरगंध-
हत्थीण, लोगुत्तमाणं, लोगनाहाणं, लोगहियाणं,
लोगपर्इवाणं, लोगपज्जोयगराणं, अभयदयाणं,
चक्खुदयाणं, मग्गदयाणं, सरणदयाणं, जीवदयाणं,
बोहिदयाणं, धम्मदयाणं, धम्मदेसियाणं,

धम्मणायागाणं धम्मसारहीणं धम्मवरचाउरंत-
चक्कवट्टीणं दीवोत्ताणं, सरणगइपइट्ठाणं, अप्पडिहय
वरनाण दंसणधराणं, विअट्टछउमाणं, जिणाणं
जावयाणं, तिन्नाणं तारयाणं, बुद्धाणं बोहयाणं, मुत्ताणं
मोयगाणं, सव्वन्नूणं, सव्वदरिसीणं, सिव-मयल-
मरुअ-मणंत-मक्खय-मव्वाबाह-मपुणरावित्ति-
सिद्धिगइ-नामधेयं ठाणं संपत्ताणं नमो जिणाणं
जियभयाणं ।

(दूसरे में - ठाणं संपाविउकामाणं णमो
जिणाणं जियभयाणं)

(तिसरे में) णमोत्थुणं मम धम्मायरियस्स
धम्मोवदेसयस्स अणेगगुण संजुत्तस्स जाव संपविउ
कामस्स ।

॥ मंगलपाठ ॥

चत्तारि मंगलं, अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहू
मंगलं, केवलपण्णत्तो धम्मो मंगलं । चत्तारि लोगुत्तमा,
अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा,
केवलपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो । चत्तारि सरणं पव्वज्जामि,
अरिहंते-सरणं पव्वज्जामि, सिद्धे-सरणं पव्वज्जामि,
साहू-सरणं पव्वज्जामि, केवलपण्णत्तधम्मं सरणं
पव्वज्जामि । अरिहंतो का शरणा, सिद्धों का शरणा,
साधुओं का शरणा, केवलप्ररुपित दयाधर्म का शरणा ।
चार शरणा, दुर्गति हरणा और शरणा नहीं कोय, जो
भवी प्राणी आदरे तो अक्षय अमरपद होय ।

अंगुष्ठे अमृत वसे, लब्धि तणा भंडार ।

श्रीगुरु गौतम सुमरिये, मनवांछित फलदातार ।

भावे भावना भाविये, भावे दीजे दान ।

भावे धर्म आराधिये, भावे केवलज्ञान ।

पावे पद निर्वाण ॥

यहाँ दीपावली विधि संपन्न होती है । ●

दीपावली का यह दिन भगवान महावीर का निर्वाण
दिन है अतः भगवान के फोटो के सामने बैठकर तन-
मन को एकाग्र कर, रात्री में निम्न जप की २०-२०
मालाएँ जपें ।

ॐ ज्हीं श्री महावीर स्वामी सर्वज्ञाय नमः
बादमें
ॐ ज्हीं श्री महावीर स्वामी पारंगताय नमः
की मालाएँ गिनें अथवा यथाशक्ति जाप करें।
कार्तिक सूद प्रतिपदा की सूर्योदय से पूर्व स्नानादि
के बाद नमस्कार महामंत्र का जप करें और
ॐ ज्हीं श्री गौतमस्वामी केवलज्ञानाय नमः
२० माला फेरें ।
फिर यह प्रार्थना बोले...
कुंदिंदुगोखीर तुसार वन्ना
सरोज हत्था कमले निसन्ना

वाएसिरी पुत्थय वग्ग हत्था
सुहायसा अम्ह सया पसत्था
इस प्रार्थना के बाद विद्या संपदा का महान ओजस्वी
मंत्र का अवश्य जप करें (२० माला)
ॐ ज्हीं ॐ
जैन मंदिर या स्थानक, उपाश्रय में जाकर प्रभु का,
संतों का दर्शन करें । मांगलिक श्रवण करें । गौतम
स्वामी को मध्यरात्री के बाद भली सुबह केवलज्ञान
प्राप्त हुआ अतः उस समय 'गौतम रास' अवश्य गावें ।
दीपावली की इस विधि का यथायोग्य पालन करें।
सबका भला हो, मंगल हो, कल्याण हो । ●



दीपावली पूजन के शुभ मुहूर्त - २०२६



- ❖ **पुष्प नक्षत्र :** अश्विन (मारवाडी मिति कार्तिक) वद ७
रविवार दि. १-११-२०२६ : * सकाळी: ८:०० ते ९:३० (चल) * सकाळी: ९:३० ते ११:०० (लाभ)
* सकाळी: ११:०० ते १२:३० (अमृत) * दुपारी: २:०० ते ३:३० (शुभ)
* सायंकाळी: ६:३० ते ८:०० (शुभ) * रात्री: ८:०० ते ९:३० (अमृत)
* रात्री: ९:३० ते ११:०० (चल)
- ❖ **धनत्रयोदशी :** (धनतेरस) अश्विन (मारवाडी मिति कार्तिक) वद १३
टिप : शुक्रवार दि. ६-११-२०२६ रोजी सकाळी १०.३१ पासून सुरु होऊन शनिवार दि. ७-११-२०२६ रोजी
सकाळी १०.४८ पर्यंत आहे. :
शुक्रवार दि. ६-११-२०२६ : मुहूर्त * सकाळी: १०:३१ ते ११:०० (अमृत) * दुपारी : १२:३० ते २:०० (शुभ)
* सायंकाळी: ५:०० ते ६:३० (चल) * रात्री : ९:३० ते ११:०० (लाभ)
- ❖ **महालक्ष्मी पूजन (दीपावली वही पूजन) :** अश्विन (मारवाडी मिति कार्तिक) वद ३०
रविवार दि. ८-११-२०२६ : * दुपारी: २:०० ते ३:३० (शुभ) * सायंकाळी: ६:३० ते ८:०० (शुभ)
* रात्री: ८:०० ते ९:३० (अमृत) * रात्री: ९:३० ते ११:०० (चल)
* रात्री: २:०० ते ३:३० (लाभ)
* वृषभ लग्न, कुंभ नवमांश : सायंकाळी ६:४१ ते ६:५३ वृषभ लग्न, वृषभ नवमांश: सायंकाळी ७:२० ते ७:३२
* अमावस्या कालावधी : रविवार दि. ०८/११/२०२६ सकाळी ११.२८ पासून
सोमवार दि. ०९/११/२०२६ दुपारी १२.३२ पर्यंत.
- ❖ **नूतन वर्ष :** (वीर संवत २५५३, विक्रम संवत २०८३) कार्तिक शुद्ध १
मंगळवार दि. १०-११-२०२६ : * सकाळी: ९:३० ते ११:०० (चल) सकाळी : ११:०० ते १२:३० (लाभ)
* दुपारी: १२:३० ते २:०० (अमृत)
श्री शुभम् भवतु !

प्रेषक : नवीनकुमार बी. शहा - २३० पाटील प्लाझा, मित्र मंडळ चौक, पुणे ९. मो. ९८२२०९०३३९

जैत्र जागृति ❖ ऑक्टोबर-नोव्हेंबर २०२६ (संयुक्त अंक) ❖ २७ ❖



साधना के महापथ पर भगवान महावीर

लेखक : युवाचार्य श्री मधुकरमुनिजी म. सा.



साधक जीवन : महावीर के साधक जीवन का यह उज्ज्वल अध्याय समता की साधना से प्रारम्भ होकर समता की सिद्धि में परिसमाप्त होता है। इसकी वर्णमाला का प्रथम वर्ण 'अभय' से आरम्भ होकर धीरता, वीरता, समता, क्षमा की साधना के साथ 'ज्ञान' (केवलज्ञान) पर जाकर परिपूर्ण होता है। सम्पूर्ण जैन साहित्य में समस्त तीर्थंकरों की साधना में महावीर की साधना का अध्याय एक अद्वितीय है, एक आश्चर्यकारी आभा से दीप्त है। इसका प्रत्येक पृष्ठ, प्रत्येक पंक्ति, प्रत्येक शब्द ध्वनिरहित होकर भी एक ऐसे नाद से गुंजित है, जिसमें समता, सहिष्णुता, क्षमा, अभय, धीरता-वीरता, संयम-समभाव, तपस्या, ध्यान, त्याग और वैराग्य का मधुर-मधुर नाद प्रतिक्षण, प्रतिपल गुंजायमान हो रहा है। उनके साधक-जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि है 'अभय' और 'समभाव'।

उपसर्गों के पहाड़ टूट-टूटकर गिरे, प्राकृतिक, मानवीय एवं दैविक उपद्रवों एवं संकटों के प्राणघातक तूफान प्रलय-काल की तरह पद-पद पर उमड़ते रहे। साढ़े बारह वर्ष के साधना काल में जैसे हर पथ पर और हर कदम पर नुकीले विषभरे काँटे बिछाये गये थे। हर दिशा के हर प्रान्त के दैत्यों के क्रूर अट्टहास हो रहे थे। सिंहों की दहाड़ें गुँज रही थीं। अंगारे बरस रहे थे। तूफान मचल रहे थे। संकट, कष्ट और उपद्रव की आंधियाँ आ रही थी और महावीर अदम्य साहस, अपराजेय संकल्प और अनन्त आत्मबल के साथ उन काँटों को कुचलते चले गये, संकटों के बादलों को चीरते चले गये, आँधियों के सामने चट्टान बन कर डट गये और दैत्यों को अपनी दिव्यता से परास्त करते चले गये, अनन्त

प्रकाश, अनन्त शान्ति और अनन्त आत्मसुख के उस अन्तिम छोर तक। उनका साधक-जीवन बड़ा ही रोमांचक, प्रेरक और शौर्यपूर्ण रहा है। आचार्य भद्रबाहु ने इसीलिए तो इस सत्य को मुक्त मन से उद्धृत किया है 'एक ओर तेईस तीर्थंकरों के साधक जीवन के कष्ट और एक ओर अकेले महावीर के। तेईस तीर्थंकरों की तुलना में भी महावीर का जीवन अधिक कष्ट-प्रवण, उपसर्गमय एवं तप-प्रधान रहा।'

भगवान महावीर की साधक - चर्या : भगवान महावीर के साधक-जीवन का प्राचीनतम वर्णन आचारांग सूत्र में प्राप्त होता है। उस वर्णन की शैली भी प्राचीन सूत्र जैसी नोट्स-प्रधान है। उसमें कथात्मकता कम, वर्णनात्मकता अधिक है। वर्णन में स्वरास्य, प्रवाह-पूर्णता एवं यथार्थता है। ऐसा लगता है जैसे आर्यसुधर्मा एक प्रत्यक्ष द्रष्टा के रूप में डायरी के पन्ने खोले बैठे हों। आर्यसुधर्मा ने भगवान महावीर की साढ़े बारह वर्ष की साधकचर्या का वर्णन बड़ा ही सजीव, रसप्रद और हृदयस्पर्शी भाषा में किया है। उस शब्दावली के प्रत्येक शब्द में श्रमण भगवान महावीर की रोमांचकारी कष्ट सहिष्णुता अपूर्व तितिक्षा, शरीर के प्रति व्युत्सर्गभाव, विदेहदशा तथा अनासक्ति, अनुकूल-प्रतिकूल उपसर्गों में मुदित समभाव, तपस्या, अविचल ध्यानयोग एवं अन्तर्लीनता मुखरित हो रही है। पाठक के सामने महावीर की साधक-चर्या का एक सजीव चित्र उपस्थित हो जाता है। उक्त शब्दावली का कुछ अंश यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

कठोर तितिक्षा : वर्धमान ने दीक्षा ली, उस समय उनके शरीर पर एक ही वस्त्र था। उन्होंने तेरह मास तक उस वस्त्र को अपने कंधे पर डाल रखा। दूसरे वर्ष आधी

पर्व : खुशियों का सहभाग

प्रवचनकार : उपाध्याय प्रवर डॉ. विशालमुनिजी म. सा.

अपने परिवार के साथ तो हम हमेशा पर्व मनाते हैं, किन्तु पर्व मनाना वही सार्थक है, जो हम समाज के साथ मनाते हैं। वैसे तो जिसके यहाँ संपन्नता है, उसके लिए हर दिन दीवाली है। जिसके पास पुण्यवाणी है, उसके लिए हर दिन विजया दशमी है। इसका कोई महत्व नहीं होता। जो दुखी है, गरीब हैं, उनको प्रेम देना, उनके साथ कुछ समय बिताना, अपनापन दिखाना और थोड़े ही समय के लिए ही क्यों न हो, उन्हें प्रसन्न कर देना ही सच्ची दीवाली मनाना है। आप लोग भी अपनी दीपावली दीन-दुखियों व गरीबों के साथ मनाएँ।

पर्व एक सामाजिक रूप है और दूसरा आध्यात्मिक। इसका सामाजिक रूप यह है कि जिन्हें ज़िंदगी में सुख-शांति नहीं मिली, उन्हें पर्व दिनों में सुख-शांति उपलब्ध हो। इसलिए पर्व सामुहिक रूप से मनाए जाते हैं। हम समाज के साथ अपनी खुशियाँ बाँट सकें, यही इन पर्वों का महत्व व उद्देश्य है। इसलिए यह महापर्व मनाते समय सोचें कि हमारा पड़ोसी भी हमारे साथ पर्व मनाने का इच्छुक हो। यह भावना मन में आते ही दया-करुणा निर्माण होगी व हम अपनी खुशियों में उन्हें भी शामिल करेंगे।

इस्लाम में कहा गया है ईद तभी ईद होगी जब परिवार के किसी के भी मन में अशांति न रहे। सभी धर्मों में पर्वों के संदर्भ में ऐसा ही कहा गया है। दुखी वर्गों को अपनी खुशी में सम्मिलित करना, पर्वों के संदर्भ में ऐसा ही कहा गया है। दुखी वर्गों को अपनी खुशी में सम्मिलित करना पर्वों का सर्वश्रेष्ठ सामाजिक स्वरूप है। इसलिए खुशियाँ मनाने के पहले सोचें पड़ोस का हर परिवार खुशियाँ मनायें। सबका चुल्हा जले।

ऐसा सोचोगे तो दया-करुणा-सद्भावना बढ़ेगी, दानभावना पैदा होगी और गरीब दीन-दुखियों की मदद करके हम अपनी दौलत का सदुपयोग कर सकेंगे। इससे पारिवारिक प्रेम, आदर भावना एकता व खुशियाँ बढ़ेंगी। यदि हम ऐसा नहीं करेंगे तो हमसे कोई क्यों जुड़कर रहेगा। इसलिए हर दिन हम उनकी मदद नहीं कर सकते तो, कम से कम त्यौहार के दिन तो, उन्हें साथ रह कर खुशियाँ तो बाँट सकते हैं। यही है पर्वों का महत्व। निर्वाण दिन मनाकर किसी को निर्वाण थोड़े ही मिल जाता है। विजयादशमी हर साल मनाते हैं फिर भी रामराज्य नहीं आता। कोई राम नहीं बन रहा। यह पर्व तो सिर्फ समाज के हर वर्ग को जोड़ने के लिए है।

हम पर्व मनाते तो हैं, किन्तु उसमें सामाजिक चेतना नजर नहीं आती। त्यौहारों के दिन भी हम नौकरों की समकक्ष नहीं लाते, उनके साथ मिलकर तो उत्सव नहीं मनाते। यह सामाजिकता नहीं है। यदि हम सामाजिक रूप से उत्सव मनाये तो करोड़ों-करोड़ों को सहयोग, प्यार व स्नेह का हाथ मिला सकता है। इससे सद्भावना बढ़ती है और सही सद्भावना हमें पापों से दूर रचाती है। प्रेम, मोहब्बत, अपनेपन की भावना यदि किसी में भर सके तो यही दीपावली मनाना होगा।

धनतेरस का त्यौहार इसलिए मनाया जाता है कि इस दिन धन का सदुपयोग करके मन को प्रसन्न कर सकें। जो साधन हमें मिले हैं उनका सदुपयोग खुशी तभी बन सकती है जब उसका सदुपयोग हो। यदि हम किसी भूखे को पेट भर भोजन करा देते हैं तो उसकी आत्मा खिल उठती है। यह दिन धन दौलत का सदुपयोग करने का दिन होता है। जिसने इसका सदुपयोग किया उसका ही धनतेरस मनाना सार्थक होता

तीर्थंकर प्रभु महावीरांचे अंतिम वचन श्रीमद् उत्तराध्ययन सूत्रा वर आधारीत

॥ जिनेश्वरी ॥

अध्याय ११ : बहुश्रुत पूजा

प्रवचनकार : उपाध्याय प.पु. श्री. प्रवीणऋषिजी म.सा. (क्रमशः)



“जो स्वतःचा व दुसऱ्याचाही उद्धार करण्यास समर्थ असतो तोच बहुश्रुत असतो.”

जीवनातील ज्या सत्याची आपण पूजा करतो, आपण तसेच होऊन जातो. मूर्खाची पूजा करणारे मूर्ख होतात, दुष्टाची पूजा करणारे दुष्ट होतात. सज्जनांची पूजा करणारे सज्जन होतात... परमेश्वराची पूजा करणारे परमेश्वर बनतात.

जीवनात जे काही मिळते ते टिकत नाही, खूप शिक्षण मिळते. पण ते उपयोगात आणता येत नाही. खूप आनंद मिळतो पण तो जास्त काळ टिकत नाही. खाळे जाते पण तृप्ती होत नाही, ऐकतो पण समज येत नाही. वाचतो पण आकलन होत नाही. हि जीवनाची शोकांतिका आहे. कधी-कधी तर असे वाटते आपण वाळूतून तेल काढण्याचा प्रयत्न करीत आहोत. या शोकांतिकेचा अंत करण्याचा उपाय भगवंतांनी दिला की जो बहुश्रुत आहे त्याची आपण पूजा करू आणि या अभिशापाला विराम देऊ.

कोण असतो बहुश्रुत ?

प्रथमतः समजून घ्या - कोण असतो बहुश्रुत ? जो स्वतःचाही उद्धार करण्यास समर्थ आहे आणि दुसऱ्याचाही उद्धार करण्यास समर्थ आहे. त्याला बहुश्रुत म्हणतात. जो स्वतःस आणि दुसऱ्यास तारण्यास समर्थ-सक्षम आहे त्याची आपण पूजा करावी. अशी बहुश्रुत प्रत्येक व्यक्ती होऊ शकते, प्रत्येक चेतना होऊ शकते. हे बहुश्रुतत्व आपला अधिकार आहे, आपले भाग्य आहे. परंतु ते आपण प्राप्त करू शकत नाही कारण त्या सौभाग्य प्राप्तीचा

उपाय, त्याचा विधी आपल्याला ठाऊक नाही म्हणूनच ऐकूनही बोध होत नाही, खाऊनही शरीर तयार होत नाही, पाहूनही दर्शन झाल्याचा अनुभव होत नाही. भक्ती करूनही भगवत्तेचा आनंद येत नाही. या सर्वांची ५ कारणे आहेत. या कारणांची चिकित्सा प्रथम आहे.

ज्ञानप्राप्ती न होण्याची कारणे

**अहं पंचहिं ठाणेहिं, जेहिं सिक्खा न लब्धई
थंभा कोहा पमाएणं, रोगेणालस्सएण य ॥**

अहंकार, क्रोध, प्रमाद, रोग, आळस ही ज्ञानप्राप्ती न होण्याची पाच कारणे आहेत. असं म्हणू नका, समजू नका की आजारी पडणे आपल्या हातात नाही, स्वस्थ राहणे आपल्या हातात नाही. जेव्हा आपल्याला अहंकार येतो, क्रोध येतो, प्रमाद येतो तेव्हा आपण रोगी होतो व आळशीपण होतो.

आपण आपल्या अंतरंगातील अहंकारामुळे स्वतःच नुकसान स्वतःच करून बसतो. अहंकारासाठी शास्त्रात शब्द दिला आहे थंभा, ज्याला आपण खांब म्हणतो. समोरचं व्यक्ती बोलत असतो, समजावत असतो पण अशा खांबावर काहीही परिणाम होत नाही. भगवंतांनी अहंकारासाठी केवढा सूचक-सटीक शब्द दिला आहे.

अहंकारी व्यक्तीवर बोलण्याचा काहीही परिणाम होत नाही. जेव्हा चित्तात अहंकार वर नांगी काढतो तेव्हा चेतना खांबासारखी होते. सुकून गेलेल्या झाडासारखी होते. वसंतऋतु आला तरी मोहोर येत नाही, ग्रीष्मऋतु आला तरी पानगळ होत नाही. गुरु प्रसन्न झाले तरी आनंदाची अनुभूती होत नाही आणि

गुरु गौतम स्वामी

लेखक : श्री. वरजीवनदास वाडीलाल शाह

गौतम स्वामी

१. गौतम स्वामी चरम शासनपति महावीर देव के प्रथम शिष्य थे। साथ साथ परमात्मा के प्रति बेहद भक्ति-राग था।

निर्मल ज्ञान से परमात्मा का मोक्ष नजदीक आते देखकर गौतम स्वामी को देवशर्मा के पास प्रतिबोध देने भेजा।

२. इस तरफ परमात्मा अपापापुरी में हस्तिपाल राजा की सभा में नवमल्ली और नवलच्छि देश ऐसे अठारह देश के राजन निर्जल छठ तप के साथ पौषध लेकर १६ प्रहर की देशना सुनने बैठे। ६४ इन्द्र, करोड़ देवता आदि १२ पर्षदा के सम्मुख अखण्डाधर देशना दी और दीपावली के दिन निर्वाण पाया।

३. गौतम स्वामी को वापिस लौटते समय यह खेदप्रद समाचार देवों की शोकातुर, अश्रुभरी आँखें देखकर मिले।

४. तब 'हाय...! वीर' कहते हुए वे गिर पड़े। ऐसे वज्राघात समान समाचार से वे आकुल-व्याकुल हो गये।

बेशुद्ध अवस्था में उठे, तो 'हे वीर... हे वीर...' कल्पांत करते हुए विलाप करने लगे।

भारी रुदन करते हुए वह कह रहे थे, 'हाँ... हाँ... वीर... तूने यह क्या किया' उनको विलाप की भयंकर अवस्था में विशेष ज्ञान हुआ।

मगध देश में गोबर नामक गाँव में वसुभूति नामक एक गौतम गोत्री ब्राह्मण रहता था। उसे पृथ्वी नामक स्त्री से इन्द्रभूति, अग्निभूति और वायुभूति नामक तीन पुत्र हुए।

अपावा नगरी में सोमिल नामक एक धनाढ्य ब्राह्मण ने यज्ञ कर्म में विचक्षण ऐसे इन तीन गौतम गोत्री ब्राह्मणों और उस समय के ब्राह्मणों में महाज्ञानी माने जाते अन्य आठ द्विजों को भी यज्ञ करने बुलाया था। सबसे बड़े इन्द्रभूति गौतम गोत्री होने से गौतम नाम से भी पहचाने जाते थे।

यज्ञ चल रहा था, उस समय वीर प्रभु की वंदना की इच्छा से आते देवताओं को देखकर गौतम ने अन्य ब्राह्मणों को कहा, 'इस यज्ञ का प्रभाव देखो ! हमारे मंत्रों से आमंत्रित देवता प्रत्यक्ष यहाँ यज्ञ में आ रहे हैं।' उस समय यज्ञ का बाड़ा छोड़कर देवताओं को समवसरण में जाता देखकर लोग कहने लगे : 'हे नगरजनों ! सर्वज्ञ प्रभु उद्यान में पधारे हैं। उनकी वंदना करने के लिए ये देवता हर्ष से जा रहे हैं। 'सर्वज्ञ' ऐसे अक्षर सुनते ही मानो किसी ने वज्रपात किया हो उस प्रकार इन्द्रभूति कोप करले बोले, 'अरे! धिक्कार ! धिक्कार! मरु देश के मनुष्य जिस प्रकार आम्र छोड़कर करील के पास जावे वैसे लोग मुझे छोड़कर उस पाखंडी के पास जाते हैं। क्या मेरे से अधिक कोई अन्य सर्वज्ञ है?' शेर के सामने अन्य कोई पराक्रमी होता ही नहीं। कदापि मनुष्य तो मूर्ख होने से उनके पास जाएँ तो भले जाएँ मगर ये देवता क्यों जाते हैं? इससे उस पाखंडी का दंभ कुछ महान लगता है।'

परंतु जैसा वह सर्वज्ञ होगा वैसे ही ये देवता लगते हैं, क्योंकि जैसा यज्ञ होता है वैसा ही बलि दिया जाता



सनाथ कौन? अनाथ कौन?

प्रवचनकार : आचार्यप्रवर श्री हीराचन्द्रजी म. सा.



असार संसार से आत्मविकास रूपी सार निकालने वाले तीर्थंकर भगवन्त तथा आत्मविकास हेतु साधना के पथ पर चरण बढ़ाने वाले परमेश्वरी भगवन्तों के चरणों में कोटि-कोटि वन्दन !

तीर्थंकर भगवान महावीर की आदेय अनुपम वाणी उत्तराध्ययनसूत्र को लेकर चर्चा चल रही है। महाराज श्रेणिक उद्यान में साधना कर रहे अनाथीमुनि से कह रहे हैं कि मेरे पास हाथी हैं, घोड़े हैं, सोना है, चाँदी है, रानियों सहित परिवार है, मैं कैसे अनाथ हूँ। आप सब प्रायः अनाथ और सनाथ का स्वरूप व्यावहारिक दृष्टिकोण से समझते हैं। जिसको रहने को घर नहीं है, वह अनाथ है। जिसका कोई पालन-पोषण करने वाला नहीं है, वह अनाथ है। किसी प्रकार का कोई रोग या वेदना उत्पन्न हो जाए, कोई दुःख आ पड़े, ऐसी स्थिति में कोई सेवा, सहयोग और परिचर्या करने वाला नहीं हो, वह अनाथ है। व्यवहार में सनाथ वह कहलाता है जिसके पास परिग्रह की प्रचुरता है, जिसके पास समृद्ध परिवार है, जो इन्द्रियों का पोषण कर सकता है। जिसके पास बहुत कुछ हो वह सनाथ और जिसके पास कुछ नहीं हो वह अनाथ है। जन-सामान्य की इसी समझ के कारण महाराजा श्रेणिक भी यहाँ महावैरागी श्रमण अनाथीमुनि को अनाथ मानकर उसके नाथ बनने को तैयार हो गये। प्रत्युत्तर में मुनिराज ने कहा- हे राजन् ! तुम खुद अनाथ हो।

मुनिराज के शब्दों को सुनकर राजा श्रेणिक अचम्भित हो गया, विस्मित हो गया। आज तक किसी के द्वारा मेरे लिए ऐसा शब्द नहीं सुना। मुनिराज द्वारा 'अनाथ' कहे जाने पर राजा श्रेणिक के मन में खयाल आया कि महाराज मुझे जानते नहीं हैं, ये मुझे पहचान

नहीं पाये हैं। राजा श्रेणिक मन में विचार कर रहे हैं कि महाराज को वास्तविकता का ज्ञान नहीं है। मुझे नहीं पहचानने के कारण ही शायद उन्होंने अनाथ शब्द का प्रयोग किया है, क्योंकि सन्त झूठ तो बोलते नहीं हैं। राजा श्रेणिक ने सोचा कि मुझे महात्माजी की शंका का समाधान करना चाहिए। महाराज श्रेणिक मुनिराज से बोले-भगवन ! मैं मगध देश का अधिपति हूँ, आपने जानकारी के अभाव में मुझे अनाथ बोल दिया है। आपकी गलतफहमी को दूर करने के लिए खुलासा करके मैं अपना परिचय दे रहा हूँ कि मेरे पास हाथी हैं, घोड़े हैं, मनुष्य हैं, अन्तःपुर है। मैं मनुष्य सम्बन्धी कामभोगों को भोगता हूँ, मेरी आज्ञा चलती है एवं ऐश्वर्य प्राप्त है। अतः मैं अनाथ कैसे हो सकता हूँ? उत्तर में अनाथीमुनि ने कहा-

न तुमं जाणे अणाहस्स, अत्थं पोत्थं च पत्थिवा।

जहा अणाहो भवइ, सणाहो वा नराहिवा ॥

सुणेह मे महाराय, अव्वक्खित्तेण चेयसा ।

जहा अणाहो भवइ, जहा मे यं पवत्तिं ॥

उत्तरज्झयणं, २०.१६-१७

हे पृथ्वीपति ! तुम अनाथ शब्द के अर्थ को अथवा उसकी उत्पत्ति को नहीं जानते हो कि किस प्रकार कोई व्यक्ति अनाथ अथवा सनाथ होता है। हे राजन् ! एकाग्र चित्त होकर मुझसे सुनो कि वास्तव में कैसे कोई व्यक्ति अनाथ होता है और मैंने किस भाव से आपके लिए अनाथ शब्द का प्रयोग किया है। राजन्! शरीर पर मुकुट आदि वेशभूषा से जाना जा सकता है कि आप राजा हो। लेकिन ऐसी बात नहीं है कि मेरे पास हाथी, घोड़े, धन, परिवार आदि वैभव नहीं था, इसलिए मैं अनाथ था। मैं अनाथ का तात्पर्य दूसरा कह

दीपावली : महापर्व निमित्त विशेष
प्रकाश पुंज प्रभु महावीर
लेखिका : साध्वी संयमप्रीतिजी म. सा.

तीर्थंकर प्रभु महावीर विश्वबंध महापुरुष आहेत. त्यांचा जन्म राजघराण्यात झाला. जगात प्रवेश करून डोळे उघडताच अपार वैभव त्यांच्या चोहीकडे होते. योवनीच्या उंबरठ्यावर पाय ठेवताच राजमुकुट त्यांची प्रतीक्षा करीत होते. त्यांच्या शरीरावरील अद्भुत चिन्ह व सौंदर्य बघून ज्योतिषाचार्यांनी भविष्यवाणी केली होती की हा राजकुमार असाधारण चक्रवर्ती सम्राट बनेल.

परंतु भ. महावीरांनी लौकीक दृष्टि न ठेवता अलौकिक दृष्टिने जीवनाची परमोच्च अवस्था बघितली. आत्मदृष्टीने जीवन अवलोकन करून चिंतन मनन केले. परिणामतः त्यांनी अनुभवलं की जीवनाचे श्रेय भोगाने नाही तर (त्याग) योगानेच साध्य होवू शकेल. आध्यात्मयोगच अशी विधि आहे जेणे करून आत्मा संसारचक्रातून मुक्त होऊन परमात्मपरी स्थापित होवू शकेल.

त्यांनी वयाच्या तिसाव्या वर्षी संसार त्याग करून आत्मसाधनेचा संयमी मार्ग स्वीकारला. साडे बारा वर्षां पर्यंत कठोर साधना - मौन व ध्यान करून कैवल्याची प्राप्ती केली. आत्मशक्तीचा दिव्य अखंड प्रकाशित राहणारा सूर्य उदीत झाला. आपल्या अलौकिक ज्ञानाने सृष्टीतील चराचर वस्तुला ते सहज स्पष्टपणे पहात व जाणत होते. त्यांनी संसारी प्राण्यांना आत्मसंदेश देवून अहिंसा, अपरिग्रह व अनेकांतवाद आदि अकाट्य सिद्धान्तांची स्थापना केली. आत्मशुद्धिचा सरळ सोपा व आचरणीय मार्ग प्रशस्त केला.

मनुष्य जातिने - कुळाने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य वा क्षुद्र होत नसतो तो आपल्या कृतीने - कर्तबगारीने वागण्याच्या पद्धतीने ब्राह्मण आदि वर्ण निर्माण करतो. मानव ही एकच जाति आहे. त्यात उंच नीच असा भेद

मुळीच येत नाही. मानवाचा अहंकार हा भेद निर्माण करतो म्हणून अहंकारावर - क्रोधावर विजय मिळविला पाहिजे. मानवी एकता व गुणांची पूज्या या दोन्ही गोष्टींना महावीरांनी पूर्ण प्रतिष्ठा दिली होती. प्राणीमात्रावर दया करून हिंसाचाराचा पूर्णतः निषेध त्यांनी केला होता. कोणत्याही प्राण्याला जीवानीशीतर मारूच नये पण कोणाच्या मनालाही त्रास होईल असे काम मानवाने करू नये असा दिव्य संदेश त्यांनी दिला.

अशा तेजस्वी कैवल्य ज्योति प्राप्त करणाऱ्या भगवान महावीरांनी लागोपाठ तीस वर्षांपर्यंत जनकल्याणार्थ ज्ञानमशाल प्रज्वलीत ठेवली. त्यांच्या उपदेशांनी प्रभावित होऊन लाखों लोकांच्या हृदयाचे परिवर्तन झाले. अज्ञान अंधारापासून ज्ञानाच्या प्रकाशाकडे वाटचाल सुरू झाली. लाखों आत्मदीप प्रज्वलीत होऊन आत्मकल्याणाकडे प्रयाण करू लागले.

जनकल्याणार्थ जागणारी ती तेजस्वी मशाल जीवनयात्रेच्या अंतीम टप्प्यावर येऊन पोहोचली. भ. महावीरांचा शेवटचा चातुर्मास अपापा नगरी (पावापूरी) येथे होता. उपदेशांची अखंड धारा प्रवाहीतच होती. कार्तिक कृष्ण आमावस्येची ती रात्र भ. महावीर हजारांच्या संख्येने उपस्थित जनतेला प्रबोधन करीत होते. प्रबोधन करता करताच मध्यरात्री त्यांची आत्मज्योत नश्वर देहाचा त्याग करून मोक्षस्थानी स्थित झाली.

एक आलोकपुरुष जगाला आलोकीत करून सिद्ध झाला. त्यांच्या निर्वाण झाल्याची बातमी क्षणार्धात तीन्ही लोकी पसरली. त्वरीत इंद्रादि देवतांनी व मानवांनी मिळून रत्नदीप व मृण्मयी असंख्य दीप प्रज्वलीत करून त्या अंधाऱ्या रात्रीला प्रकाशित केले. दीपमालेच्या जगमगाटाने आसमंत न्हावून निघाला. अशा प्रकारे त्या पवित्र दिनाला आजही भक्तगण दीपावली म्हणून साजरी करतात व त्या प्रकाश पुंजरूप भ. महावीरांच्या चरणी भावपूर्ण श्रद्धांजली अर्पण प्रणाम करतात आपणही करू या.



विश्वशांति के तीन सूत्र

१. अहिंसा २. अपरिग्रह ३. अनेकांत

लेखक : उपाध्याय अमरमुनि



१. अहिंसा

भगवान महावीर का अहिंसाधर्म एक उच्चकोटि का आध्यात्मिक एवं सामाजिक धर्म है। यह मानव जीवन को अन्दर और बाहर-दोनों ओर से प्रकाशमान करता है। महावीर ने अहिंसा को भगवती कहा है। मानव की अन्तरात्मा को अहिंसा भगवती, बिना किसी बाहरी दबाव, भय, आतंक अथवा प्रलोभन के सहज अन्तः प्रेरणा देती है कि मानव विश्व के अन्य प्राणियों को भी अपने समान ही समझे, उनके प्रति बिना किसी भेद-भाव के मित्रता एवं बन्धुता का प्रेमपूर्ण व्यवहार करे। मानव को जैसे अपना अस्तित्व प्रिय है, अपना सुख प्रिय एवं अभीष्ट है' यह सह-अस्तित्वरूप परिबोध ही अहिंसा का मूल स्वर है। अहिंसा 'स्व' और 'पर' की 'अपने' और 'पराये' की, घृणा एवं वैर के आधार पर खड़ी की गई भेदरेखा को तोड़ देती है।

अहिंसा का धरातल

अहिंसा विश्व के समग्र चैतन्य को एक धरातल पर खड़ा कर देती है। अहिंसा समग्र जीवन में एकता देखती है, सब प्राणियों में समानता पाती है। इसी दृष्टि को स्पष्ट करते हुए भगवान महावीर ने कहा था 'एगो आया' आत्मा एक है, एक रूप है, एक समान है। चैतन्य के जाति, कुल, समाज, राष्ट्र, स्त्री, पुरुष आदि के रूप में जितने भी भेद हैं, वे सब आरोपित भेद हैं, बाह्य निमित्तों के द्वारा परिकल्पित किये गए मिथ्या भेद हैं। आत्माओं के अपने मूल स्वरूप में कोई भेद नहीं है। और जब भेद नहीं है तो फिर मानवजाति में यह कलह एवं विग्रह कैसा? त्रास एवं संघर्ष कैसा? घृणा एवं वैर कैसा? यह सब भेदबुद्धि की देन है। और अहिंसा में

भेद बुद्धि के लिए कोई स्थान नहीं है। अहिंसा और भेदबुद्धि में न कभी समन्वय हुआ है और न कभी होगा। आज जो विश्व-नागरिक की कल्पना कुछ प्रबुद्ध मस्तिष्कों में उड़ान ले रही है, जयजगत का उद्घोष मुखरित हो रहा है, उसको अहिंसा के द्वारा ही मूर्तरूप मिल सकता है।

अहिंसा की प्रक्रिया

अहिंसा मानव जाति को हिंसा से मुक्त करती है। वैर, वैमनस्य-द्वेष, कलह, घृणा, ईर्ष्या-डाह, दुःसंकल्प, दुर्वचन, क्रोध, अभिमान, दम्भ, लोभ, लालच, शोषण, दमन आदि जितनी भी व्यक्ति और समाज की ध्वंसमूलक विकृतियाँ हैं, सब हिंसा के ही रूप हैं। मानव मन हिंसा के उक्त विविध प्रहारों से निरन्तर घायल होता आ रहा है। मानव उक्त प्रहारों के प्रतिकार के लिए भी कम प्रयत्नशील नहीं रहा है। परन्तु वह प्रतिकार इस लोकोक्ति को ही चरितार्थ करने में लगा रहा कि ज्यों-ज्यों दवा की, मर्ज बढ़ता ही गया। बात यह हुई कि मानव ने वैर का प्रतिकार वैर से, दमन का प्रतिकार दमन से करना चाहा, अर्थात् हिंसा का प्रतिकार हिंसा से करना चाहा, और यह प्रतिकार की पद्धति ऐसी ही थी, जैसी कि आग को आग से बुझाना, रक्त से सने वस्त्र को रक्त से धोना। वैर से वैर बढ़ता है, घटता नहीं है। घृणा से घृणा बढ़ती है, घटती नहीं है। यह उक्त प्रतिकार ही था, जिसमें से युद्ध का जन्म हुआ, सूली और फाँसी का आविर्भाव हुआ। लाखों ही नहीं, करोड़ों मनुष्य भयंकर-से-भयंकर उत्पीड़न के शिकार हुए, निर्दयता के साथ मौत के घाट उतार दिए गए, परन्तु समस्या ज्यों की त्यों सामने खड़ी रहें।

वीरता का शिखर-भगवान महावीर

लेखिका : मालव चंद्रिका - साध्वी राजश्री

भगवान महावीर निर्वाण महोत्सव केवल दीप जलाने और उत्सव मनाने का अवसर नहीं, बल्कि उस महान आत्मा को स्मरण करने का पावन पर्व है, जिसने अपने जीवन से संसार को वीरता, अहिंसा, संयम और आत्मविजय का मार्ग दिखाया। महावीर की वीरता किसी दूसरे को पराजित करने में नहीं, बल्कि स्वयं के भीतर के क्रोध, मान, माया, लोभ, भय और मोह को जीतने में थी। भगवान महावीर ने राजसी वैभव का त्याग कर आत्मकल्याण की यात्रा प्रारंभ की। साधना के मार्ग में उन्हें अनेक उपसर्गों और कठिन परीक्षाओं का सामना करना पड़ा। किंतु उनका मन तनिक भी विचलित नहीं हुआ। उन्होंने प्रत्येक पीड़ा और प्रतिकूलता को समता भाव से सहन किया। न किसी के प्रति क्रोध किया, न प्रतिशोध की भावना रखी। उनकी साधना इतनी दृढ़ थी कि बाहरी कष्ट उनके भीतर की शांति को छू भी नहीं सके। इसी अद्भुत तप, संयम और समता के परिणाम स्वरूप उन्होंने केवलज्ञान प्राप्त किया और समस्त जीवों के कल्याण का मार्ग संसार के सामने रखा।

महावीर ने हमें सिखाया कि सच्ची विजय दूसरों पर शासन करने में नहीं, बल्कि अपने मन पर शासन करने में है। उन्होंने संसार को संदेश दिया- “जियो और जीने दो।” अहिंसा उनके जीवन का केवल सिद्धांत नहीं, बल्कि जीवन की सांस थी। उन्होंने प्रत्येक जीव में आत्मा का दर्शन किया और बताया कि

किसी भी जीव को कष्ट देना अंततः स्वयं को ही कष्ट देना है। आज विज्ञान नई-नई खोजों के माध्यम से पर्यावरण, मानसिक शांति, तनाव और हिंसा से मुक्त जीवन की आवश्यकता पर बात कर रहा है। पूरी दुनिया शांति और अहिंसा की तलाश में है। जिस अहिंसा, संयम, अपरिग्रह और अनेकांत की आवश्यकता आज मानवता महसूस कर रही है, भगवान महावीर ने लगभग २६०० वर्ष पूर्व ही उसका मार्ग संसार को दिखा दिया था।

इसलिए महावीर केवल जैन समाज के आराध्य नहीं, बल्कि संपूर्ण मानवता के मार्गदर्शक हैं। आज प्रश्न यह नहीं है कि हम महावीर की पूजा कितनी करते हैं; प्रश्न यह है कि हम महावीर के विचारों को अपने जीवन में कितना उतारते हैं। यदि घर में क्रोध के स्थान पर क्षमा, हिंसा के स्थान पर अहिंसा, संग्रह के स्थान पर अपरिग्रह और मतभेद के स्थान पर अनेकांत आ जाए, तो महावीर की शिक्षाएँ वास्तव में हमारे जीवन में उतर जाएँगी। आइए, इस निर्वाण महोत्सव पर केवल दीपक न जलाएँ, बल्कि अपने भीतर महावीर के विचारों का दीप जलाएँ। अपने आचरण से अहिंसा को अपनाएँ, अपने व्यवहार से क्षमा को जीवित रखें और अपने जीवन से शांति का संदेश दें। महावीर का मार्ग अपनाएँगे तो जीवन महान बनेगा और हमारा जीवन स्वयं दुनिया के लिए शांति, संयम और अहिंसा की एक मिसाल बन जाएगा। ●

जास्तीत जास्त जैन समाजापर्यंत पोहचण्याचा
सर्वात खात्रीशीर, सर्वात सोपा व सर्वात रिजनेबल मार्ग...

जैन जागृति

आजच जाहिराती व वर्गणी साठी संपर्क करा.
मो. : ९८२२०८६९९७, ८२६२०५६४८०

जैन जागृति ❖ ऑक्टोबर-नोव्हेंबर २०२६ (संयुक्त अंक) ❖ ७५ ❖

गोचरी

लेखक : सुरेश बन्सीलालजी लुणावत, देहूरोड, पुणे. मो. : ९१५८००१३६९

‘गोचरी’ शब्द संस्कृत मधील ‘गो’ म्हणजे गाय आणि ‘चर’ म्हणजे चरणे, ग्रहण करणे या दोन शब्दांनी तयार झाला आहे. ज्याप्रमाणे गाय एका ठिकाणी गवत न खाता विभिन्न ठिकाणी / वेगवेगळ्या ठिकाणी गवत खाते त्याप्रमाणेच जैन साधू साध्वी एकाच ठिकाणाहून अन्न न घेता विविध ठिकाणाहून परंतु मर्यादित संख्ये मध्ये अन्न किंवा ज्याला भिक्षा/ गोचरी म्हणतात ते घेतात. यालाच जैन धर्मा मध्ये ‘गोचरी ओराणा’ असे म्हणतात.

जैन धर्मांमध्ये सचित आणि अचित असे दोन शब्द येतात. सचीत गोचरी याचा अर्थ ते अन्न किंवा त्या खाण्याच्या वस्तू ज्यामध्ये जीव असतात किंवा अतिसूक्ष्म असे डोळ्यांनी न दिसणारे जीव असतात. उदाहरणार्थ विविध प्रकारची फळे, भाज्या, पाने, फुले इत्यादी. जैन साधू आहार घेताना या सचित वस्तू आहारा मध्ये/ गोचरी मध्ये घेत नाहीत. ज्या वस्तू अचित आहेत म्हणजेच निर्जीव आहेत, ज्यात जीव नाही त्याच गोष्टी किंवा खाण्याच्या वस्तू ते ग्रहण करू शकतात. साधू जीवना मध्ये त्यांनी याच प्रकारचा आहार घ्यावा असा दंडक जैन आगम शास्त्रां मध्ये दिलेला आहे.

जैन साधू ज्या भांड्यांमध्ये आहार घेतात त्याला ‘पात्र’ म्हणतात. ही पात्र ‘रोहिडा’ नावाच्या लाकडां पासून मुख्यतः हाताने बनवलेली असतात. ही पात्र वजनाने अतिशय हलकी, टिकाऊ व कलात्मक असतात. जैन साधू हे पायी प्रवास/विहार करतात त्यावेळी ही पात्रे ते आपल्या जवळ ठेवतात. ही वजनाने हलकी असल्यामुळे त्यांना ती सहजपणे पायी विहारामध्ये नेता येतात. ही पात्रे मुख्यतः राजस्थान

मधील पाली जिल्ह्यातील बगडीनगर या गावामध्ये बनवली जातात. त्याशिवाय राजस्थानातील इतर काही गावांमध्ये ही पात्र बनवणारे कारागीर आहेत. या पात्रांवरती कुठल्याही प्रकारची रासायनिक प्रक्रिया केली जात नाही. अत्यंत नैसर्गिक रीतीने ही पात्र मुलायम व मजबूत केली जातात. राजस्थानातील अनेक कुटुंबाचा उदरनिर्वाह या पात्रांच्या निर्मितीवर होत आहे. जैन धर्माच्या दिगंबर संप्रदायातील साधू मात्र कुठल्याही प्रकारचे पात्र आहार घेण्याच्या वेळी वापरत नाहीत कारण ते अन्नग्रहण आपल्या दोन्ही हाताने करतात.

दिगंबर साधूंच्या संदर्भात ‘पडगाहन’ हा शब्द वापरला जातो. याचा अर्थ साधूंना श्रावकाने अतिशय शुद्ध अंतःकरणाने आहार ग्रहण करण्यासाठी आमंत्रण देणे. दिगंबर साधू, साध्वी आहार घेण्यासाठी निघताना सर्वात प्रथम आपल्या संघ प्रमुखाची आज्ञा घेतात. त्यानंतर ते मंदिरातील विराजमान तीर्थंकर यांचे दर्शन घेतात. काही वेळा ते या ठिकाणी एखादा नियमही घेतात, जो त्यांच्या मनामध्ये असतो व तशा प्रकारचा प्रसंग जिथे दिसेल त्या श्रावकाच्या घरी ते अन्नग्रहण करतात. काही दिगंबर साधू त्याच श्रावकांच्या घरी आहार घेतात ज्यांनी काहीतरी व्रत आपल्या जीवनामध्ये घेतले आहे. शक्यतो ते जे कुटुंब शुद्ध शाकाहारी आहे, मद्य, रात्रीचे भोजन, कंदमूळ याचा त्याग केलेला आहे अशा कुटुंबाला प्राधान्य देतात. दिगंबर साधूंना जो आहार देण्यात येतो तो ताजा, शुद्ध असला पाहिजे कारण ते संपूर्ण दिवसां मध्ये किंवा २४ तासां मध्ये फक्त एकदाच आहार घेतात. आहाराच्या वेळीच ते पाणी व त्यांचे काही औषध असल्यास घेतात.

कार्तिक मास के पंच पर्वों में कार्तिक वदी चतुर्दशी का पर्व रूप-चौदस या रूप-चतुर्दशी के रूप में मनाया जाता है।

रूप का अर्थ : आकृति

रूप का अर्थ है, शरीर की आकृति। इसका एक अर्थ सौन्दर्य भी है। रूप के दो भेदों में एक सुन्दर रूप है और दूसरा कुरूप है। सुन्दरता सभी को इष्ट है। कुरूप होना कोई नहीं चाहता। रूप चौदस को लोग कृत्रिम तरीकों से अपना रूप सजाते-सँवारते हैं। रंग को गोरा करने के लिए क्रीम-पावडर लगाते हैं। चेहरे की ब्लिचिंग कराते हैं। तो क्या सुन्दरता गोरे रंग में ही है? राम-कृष्ण दोनों ही काले थे। फिर भी दोनों इतने सुन्दर थे कि उनकी सुन्दरता के बारे में कहा गया है- 'कोटि मनोज लजावन हारे।' अर्थात् करोड़ों कामदेवों की छवि को फीका करने वाले। महासती द्रौपदी का एक नाम कृष्णा भी है, क्योंकि अनिन्द्य सुन्दरी द्रौपदी भी काली थी। जिस लैला के पीछे मजनू पागल बना हुआ था, वह लैला काली थी। जब कोई काले रंग का पुरुष या महिला अपने काले चेहरे पर पाउडर लगाती है तो उसे देखकर मेरे मन में एक उत्प्रेक्षा उठती है- मानो काली जामुनों पर नमक छिड़क दिया हो। काले रंग को कुरूपता का प्रतीक क्यों मानते हो? यदि काजल न हो तो आँखों को सौन्दर्य कौन देगा? लोग सफेद बालों से घबराते हैं और बालों को काले करते हैं। क्या यह सत्य नहीं है? आप स्वयं अनुभव करें।

हाँ तो, काले रंग को कुरूपता का प्रतीक न मानें। यदि आप कुरूप हैं। आपकी शक्ल अनाकर्षक और भद्दी है तो उसे रूपवान बनाने का भी उपाय है। कुरूपता को गुण वृद्धि से दूर किया जा सकता है।

चाण्डाल कुल में जन्मे-हरिकेशी बहुत कुरूप थे। ऊपर से क्रोधी भी थे। सब लोग उनसे दूर-दूर रहते थे। एक समारोह में हरिकेशी उपेक्षित होकर दूर बैठे थे। तभी वहाँ एक सर्प निकल आया। विषधर होने के कारण उसे लोगों ने मार दिया। फिर एक दुमुँही निकली। वह निर्विष थी। उससे किसी ने कुछ नहीं कहा तो हरिकेशी ने चिन्तन किया सबसे पहला काम तो मुझे यह करना चाहिए कि क्रोध के विष को तत्काल नष्ट कर दूँ। फिर अपनी कुरूपता को धर्म और तप से दूर करूँ। इसी चिन्तन से वे मुनि बन गये। वे ऐसे तपस्वी हुए कि एक देव सदा उनकी सेवा में रहने लगा। सारा जगत उनके चरणों में झुकता था। कहानी तो लम्बी है, पर आप इतना ही समझ लें कि आत्मज्ञान से आप अपने रूप का नहीं, भीतर के स्वरूप को इतना सुन्दर बना सकते हैं कि सारा संसार आपको चाहने लगे।

अष्टावक्र और जनक

अष्टावक्र कितने कुरूप थे। आठ अंगों के वक्र या टेढ़े थे। वे एक बार जनक के दरबार में पहुँचे। उनके अष्टवक्रों को देखकर सभा के लोग हँसने लगे। बदले में अष्टावक्र भी ठहाका मारकर हँसे। ज्ञानी जनक ने पूछा- विप्रकुमार ! तुम क्यों हँसे? अष्टावक्र ने प्रति प्रश्न किया - तेरी सभा के लोग क्यों हँसे? जनक ने उत्तर दिया- 'तुम्हारे अष्टवक्रों को देखकर सभासद हँसे हैं।' अष्टावक्र ने उत्तर दिया- 'राजन् ! तेरी सभा में मैं यह सोचकर आया था कि यहाँ ज्ञानी और तत्त्वदर्शी होंगे, लेकिन तेरी सभा में तो सब चमार ही चमार हैं। इन्होंने मेरे आत्मज्ञान के सौन्दर्य को नहीं देखा। चमड़े की कुरूपता देखी तो चमारों की परख देखकर मुझे हँसी आ गई।'।

दुःख : एक अभिशाप या वरदान

लेखक : श्री. धर्मेन्द्र कुमार जैन, जयपूर. मो. : ९४६०४४१६७८

संसार में प्रत्येक प्राणी सुख चाहता है, दुःख नहीं। उसकी प्रत्येक समय प्रत्येक क्रिया सुख प्राप्ति के लिए होती है। यदि किसी कारण से कोई दुःख आ भी जाए तो कोई भी दुःख नहीं चाहता और यथाशीघ्र उस आगत दुःख से छूटना चाहता है। यह सामान्य रूप से प्रत्येक मानव का स्वभाव है। किसी कवि ने कहा है—

सर्वत्र सर्वस्य सदा प्रवृत्तिः,

दुःखस्यनाशाय सुखस्य हेतोः ।

तथापि दुःखं न विनाशमेति,

सुखं कस्यापि भजेत् स्थिरत्वम् ॥

अर्थात् दुःख के नाश के लिए और सुख प्राप्ति हेतु सभी जनों की प्रवृत्ति होती है, किन्तु आश्चर्य है कि दुःख से मुक्ति नहीं होती तथा सुख स्थिर नहीं रहता। आशय यह है कि व्यक्ति के द्वारा न चाहने पर भी सुख स्थिर रहता नहीं है और दुःख न चाहने पर भी आ ही जाता है। जो स्थिति परिवर्तनशील है चाहे सुख अनुभव कराने वाली हो या दुःख का अनुभव कराने वाली हो जो निरन्तर बदल रही है उससे सुख अनुभव करना या दुःख अनुभव करना पूर्णरूपेण बेमानी है, निरर्थक है। जो व्यक्ति सुख और दुःख को ही अपना जीवन मानते हैं, वे कदापि सुख और दुःख से मुक्त नहीं हो सकते। वे निरन्तर अशान्ति, तनाव, चिन्ता आदि से ग्रस्त रहते हैं।

वास्तव में चिन्तन किया जाए तो यह अनुभव में आता है कि सुख और दुःख जीवन नहीं बल्कि ये साधन हैं, साधनों का उपयोग करते हुए व्यक्ति जीवन में निरन्तर विकास करता है और सुख, शान्ति तथा प्रसन्नता के मार्ग पर अग्रसर होता है। सुख और दुःख प्राकृतिक विधान है, सुख-दुःख का चक्र प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में निरन्तर चलता रहता है, अन्तर

इतना ही है कि किसी को पहले सुख मिलता है तो दुःख बाद में आता है तथा किसी को पहले दुःख मिलता है तो बाद में सुख प्राप्त होता है, यह एक क्रमिक अवस्था है। महाकवि कालिदास ने मेघदूत में कहा भी है—

चक्रवत् परिवर्तन्ते सुखानि च दुःखानि च।

जिस प्रकार एक गाड़ी का पहिया ऊपर से नीचे आता है और पुनः नीचे से ऊपर जाता है, उसी प्रकार जीवन में सुख-दुःख का क्रम अनवरत चलता रहता है।

सुख और दुःख का सदुपयोग

सुख और दुःख के विषय में दो अवस्थाएँ होती हैं— एक भोग और दूसरी सदुपयोग। सुख-दुःख का भोग जीवन में पराधीनता बढ़ाता है, जबकि सुख-दुःख का प्रभाव या सदुपयोग उसकी दासता से मुक्त करता है। जब प्राणी दुःख का भोग करता है तो प्राप्त प्रतिकूल परिस्थिति में दुःख, तनाव, असहाय सा अनुभव करता है, व्यक्ति, वस्तु और परिस्थितियों को अपने दुःख का कारण मानता है। व्यक्तियों के प्रति द्वेष करता है, वस्तुओं को खराब मानता है, परिस्थितियों को अपने अनुकूल करने का प्रयत्न करता है, हालाँकि परिस्थिति में परिवर्तन होता है किन्तु समय के परिपाक के साथ स्वयं की परिस्थिति बदलती है, दूसरी बात यह है कि व्यक्ति जब दुःख का भोग करता है तो पूर्व में संचित कर्मों की निर्जरा नहीं करता और नवीन कर्मों का बन्धन भी करता है।

इसके विपरीत व्यक्ति यदि सुख और दुःख का सदुपयोग करता है तो उसे मानसिक शान्ति, प्रसन्नता, तनावरहित होना आदि की प्राप्ति होती है। उसकी मनःस्थिति सदा प्रसन्न रहती है। परिणामतः पुरातन अर्जित कर्मों की निर्जरा करता है और नवीन कर्मों का बन्ध भी नहीं करता। उसका चिन्तन रहता है कि सुख

भावकर्म से होता हैरान : वीतरागता से पाओ निर्वाण

प्रवचनकार : पूज्य विदुषी शारदाबाई महासतीजी

सुज्ञ बन्धुओं ! सुशील माताओं और बहनों !

आत्मा चेतन है और कर्म जड़ है। ये जड़ होते हुए भी चेतन आत्मा को क्यों हैरान करते हैं ? उसका एक ही कारण है कि आत्मा मोह के वशीभूत होकर कर्म के साम्राज्य के नीचे दब गया है। इस कारण उसे (आत्मा को) अपनी शक्ति का ख्याल नहीं आता। आठ प्रकार के कर्म द्रव्यकर्म हैं। इन द्रव्यकर्मों की जड़ अगर कोई हो तो वह है - भावकर्म। भावकर्म का अर्थ है राग और द्वेष। 'उत्तराध्ययन सूत्र' (अ-३२) में कहा गया है "रागो य दोसो वि य कम्मबीयं" - राग और द्वेष ये दोनों कर्म के बीज हैं। छोटे-से बीज से विशाल वृक्ष हो जाता है न ? इसलिए जब तक राग और द्वेषरूपी भावकर्म नष्ट न हों, तब तक द्रव्यकर्म आत्मा को परेशान करेंगे। अतः यदि सच्चा सुख प्राप्त करना हो तो ऐसी लगन लगाओ कि मैं अपने पुराने कर्मों को शीघ्र क्षय करूँ और नये कर्म न बंधे, इसका सतत उपयोग रखूँ। सुख तो प्रत्येक प्राणी को चाहिए; परन्तु कर्म बांधते समय जीव ध्यान नहीं रखता कि मैं कर्म बांध रहा हूँ, इनका फल मुझे अकेले ही भोगना पड़ेगा। कर्म उदय में आएँगे, तब कोई भी (फल भोगने में) भागीदार बनने को तैयार नहीं होता। कर्म का कानून अटल है। अभी तक ऐसा नहीं हुआ, और नहीं होगा कि कर्म भोगने में किसी ने भागीदारी की हो। जो कर्म करता है, उसका फल उसीको भोगना पड़ता है।

शुभाशुभ कर्म के अनुसार जीव को शुभाशुभ गति मिलती है। नरक में जाता है, तब उसे कैसी कठोर सजा भोगनी पड़ती है। परमाधामी देव उसे ताड़न, मारन, छेदन-भेदन आदि करते हैं। जाज्वल्यमान आग में उसे झोंक देते हैं। उस समय नारकीय जीव कैसा करुण

कल्पान्त करते हैं ? उस समय उसके दुःख में हिस्सा बंटाने तो नहीं, किन्तु दुःख में आश्वासन देने भी कोई नहीं जाता। नरक के दुःख तो प्रत्यक्ष दिखाई नहीं देते, किन्तु तिर्यचों को तो प्रत्यक्ष दुःखित, पीड़ित होते हुए देखते हैं। बेचारे तिर्यचों को पराधीनता में कितनी भूख-प्यास सहन करनी पड़ती है ? कितना बोझ उठाना पड़ता है ? कभी-कभी कसाई के हाथ से कटना पड़ता है। ऐसे दारुण दुःख भोगने पड़ते हैं। कदाचित्तुम कहो कि देवलोक में तो सुख ही सुख है, किन्तु ये सुख एक तो भौतिक हैं, दूसरे, वहाँ भी देवों में भी परस्पर प्रतिस्पर्धा, ईर्ष्या, द्वेष आदि होते हैं, इसलिए जहाँ विषमता है, वहाँ सुख कहाँ ? और देवलोक में भी जो सुख है, वह भौतिक है, आध्यात्मिक सुख नहीं है।

मनुष्यों में सम्पूर्ण सुखी प्रायः नहीं है। अधिकांश लोग किसी न किसी वस्तु के अभाव में दुःखी हैं। किसी को धन का, किसी को सन्तान का दुःख है, किसी का शरीर निरोगी नहीं है। पूर्ण सुखी तो सिद्ध भगवान हैं। उनको दुःख का अंश भी नहीं है। उनको एकान्त और शाश्वत सुख है। ऐसा सुख आने के बाद कभी जाता नहीं। ऐसे शाश्वत सुख को जीव क्यों नहीं प्राप्त कर पाता ? उसका एक ही कारण है - राग और द्वेष। इन दोनों के कारण जीव उस शाश्वत सुख को प्राप्त नहीं कर सकता। क्योंकि राग और द्वेष के कारण जीव कर्म बांधता है। उन भिन्न-भिन्न कर्मों के कारण जीव पुण्यकर्मों से भौतिक-सुख प्राप्त करता है, पाप के कारण दुःख पाता है। विचार करो, सुख और दुःख क्या है ? जीव को पदार्थों को पाने की तीव्र उत्कंठा जागती है, यहीं से दुःख का प्रारम्भ हुआ। क्योंकि जहाँ इच्छा है, वहाँ दुःख है। जिसके मन से चाह गई चिन्ता मिटी,

आओ ! दुध्यानि छोड़ें !!

२६ : कलुष (ईर्ष्या) ध्यान

लेखक : आचार्य विजय रत्नसेन सूरिश्वरजी म.सा.

(क्रमशः)

दूसरों के उत्कर्ष को देखकर मन में जो ईर्ष्या का भाव पैदा होता है उस ध्यान को कलुष ध्यान कहते हैं।

ईर्ष्यालु व्यक्ति दूसरे के उत्कर्ष को सहन नहीं कर पाता है। वह दूसरों के उत्कर्ष, समृद्धि आदि को देख मन-ही-मन जलता रहता है।

जिसके दिल में प्रमोद भाव होता है, वह तो दूसरों के उत्कर्ष को देखकर खुश होता है। परंतु ईर्ष्यालु व्यक्ति की हालत तो उस जवासा नाम की वनस्पति की तरह होती है जो दूसरों के विनाश को देखकर खुश होती है।

ईर्ष्या एक ऐसी आग है, जो आदमी को भीतर से ही जलाती है। ईर्ष्यालु व्यक्ति अंदर ही अंदर जलता रहता है।

ईर्ष्या एक खतरनाक अग्नि

उस मार्ग पर थोड़ी देर पहले कोयले के अंगारे जल रहे थे, किसी ने उन जलते अंगारों पर राख डाल दी। उसी समय एक आदमी उस मार्ग से निकला। राख समझकर उसने उस पर पैर रख दिया। पैर रखते ही उसके मुँह से चीख निकल गई, “अरे ! यहाँ तो आग है।” उस छुपी आग से उसका पैर जल गया था।

उस छुपी हुई आग से भी अधिक खतरनाक है- ईर्ष्या की आग।

ईर्ष्या अंतरंग आग है। जो व्यक्ति इस आग का शिकार हो जाता है, वह व्यक्ति बाहर से प्रसन्न दिखते हुए भी अंदर से जल रहा होता है।

याद आ जाती है, यह छोटी सी घटना।

सोमा की साधना से देवी प्रसन्न हुई। देवी ने

कहा- “सोमा ! मैं तुझ पर प्रसन्न हूँ, तुझे जो चाहिए वह मिलेगा, किंतु इसके साथ ही तेरी पड़ोसन मीरा को दुगुना मिलेगा।” कहकर देवी चली गई।

सोमा ने धन-धान्य-वस्त्र आदि की अनेक इच्छाएँ कीं, उसकी सब इच्छाएँ पूर्ण हो गईं, किंतु पड़ोसन को दुगुना मिला, इसका उसे बड़ा दुःख था। उसने दो मंजिल का मकान माँगा और देवी ने दो मंजिल का मकान बना दिया, किंतु पड़ोसन का मकान चार मंजिल का हो गया।

बस ! सोमा अपनी पड़ोसन के सुख को देख न सकी। ईर्ष्या की आग ने उसकी प्रसन्नता के बाग को भस्मसात कर दिया। वह किसी भी प्रकार से उसका विनाश चाहती थी।

अंत में उसने अपने मकान के सामने एक कुएँ की याचना की, कुआँ बन गया। उसके घर के सामने एक कुआँ और पड़ोसन के घर के सामने दो कुएँ हो गए।

फिर उसने देवी से कहा- मेरी एक आँख फोड़ दो, तत्काल उसकी एक आँख फूट गई और उसी समय पड़ोसन की दोनों आँखें फूट गईं और अंधी बनी पड़ोसन दिखाई न देने से कुएँ में गिर पड़ी। सोमा प्रसन्न हो गई।

यह स्थिति है, ईर्ष्यालु व्यक्ति की वह अपना नुकसान करके भी दूसरे के विनाश के लिए लालायित रहता है।

ईर्ष्यालु व्यक्ति का चित्त कभी प्रसन्न नहीं होता है। वह दूसरे को सुखी देखकर हर्षित नहीं होता। उसे तो दूसरे के विनाश में ही आनंद आता है। ईर्ष्यालु व्यक्ति